* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

श्रीमद्भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १६ | गौराब्द ४८४, मास—दामोदर ३, वार—क्षीरोदशायी, सोमवार, ३० कार्त्तिक, सम्वत् २०२७, १६ नवम्बर १९७० | संख्या ६

नवम्बर १९७०

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीब्रह्मणा कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।१४।१—४०)

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥१।

ब्रह्माजीने गोवत्स और गोपबालक हरण कर जो अपराध किया था, उसके लिए क्षमा याचना करते हुए इस प्रकारसे भगवान कृष्णकी स्तुति करने लगे—

हे प्रभो ! एकमात्र आप ही जगतमें स्तुति करने योग्य हैं । आपका श्रीअङ्ग नवीन मेघ के समान सुन्दर श्याम वर्णयुक्त है । उसमें आपका पीताम्बर बिजलीके चमक की तरह शोभा

पा रहा है। आपका गलदेश गुञ्जाकी मालासे सुशोभित हो रहा है। आपके कानोंमें भूषणस्वरूप सुन्दर फूल शोभा पा रहे हैं और सिर पर शोभायमान सुन्दर मोर-मुकुटसे आप अत्यन्त देदीप्यमान हो रहे हैं। गलेमें वनमाला शोभा पा रही है और वन्यवेशसे आप युक्त हैं। बाएँ हथेली में दहीमिश्रित भात का कौर, बगलमें बेंत और सींग एवं कमरकी फेंटमें मुरली शोभा पा रही है। आपके दोनों चरणकमल अत्यन्त सुकोमल हैं। आप नित्यकाल ही गोपराज नन्द महाराज के पुत्र हैं। ऐसे आपकी मैं स्तुति कर रहा हूँ ॥१॥

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य न भूतमयस्य कोऽपि।
नेशे महि त्ववसितुं मनसाऽन्तरेण साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूते ॥२॥

मेरे प्रति कृपा करनेके लिए भक्तोंकी इच्छानुसार प्रकटित शुद्धसत्वात्मक आपके इस अद्भुत नारायणाख्य श्रीविग्रहकी महिमाको जाननेमें मैं अथवा दूसरा कोई समर्थ नहीं है। अतएव स्वयंरूप आत्मसुखानुभवस्वरूप अवतारी पुरुष आपकी महिमाको कोई व्यक्ति चित्तवृत्तिका निरोध करके भी जान नहीं सकता, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। अथवा आपके विराट विग्रहकी महिमा चित्तवृत्ति निरोध करके भी कोई जाननेमें समर्थ नहीं होता। इसलिए मेरे प्रति कृपा कर स्वेच्छासे प्रकटित तनु आत्मसुखानुभव स्वरूप स्वयं भगवान् आपकी महिमा कोई जान नहीं सकता, इसमें सन्देह क्या है ? ॥२॥

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥३॥

ज्ञान अर्थात् अक्षज (जड़ीय) ज्ञान द्वारा भगवत्स्वरूप-ऐश्वर्य और महिमा विचार करनेका प्रयास सम्पूर्ण रूपसे परित्याग कर अपने अपने आश्रममें या साधु-वैष्णवोंके निकट स्थित होकर जो व्यक्ति साधुओंके मुखसे स्वतः ही (स्वेच्छासे) उच्चारित और उनके सन्निध्यमात्रमें स्वयं ही श्रवण-पथ या कानोंमें प्रविष्ट आपकी नाम-रूप-गुण-लीलापर कथाओंका शरीर, मन और वाक्य द्वारा सेवन करते-करते जीवन धारण करते हैं, वे दूसरे कोई कर्म न करने पर भी त्रिलोकमें अन्यान्य व्यक्तियों द्वारा अजित (वशमें न आनेवाले) आप उनके द्वारा जित अर्थात् वशीभूत होते हैं ॥३॥

श्रेयः श्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥४॥

हे प्रभो ! जो सभी ज्ञानमार्गावलम्बी व्यक्ति अपने मंगल लाभके परम उपादेय पथ-स्वरूप भगवद्भक्तिका परित्याग कर केवल अर्थात् भक्तिशून्य ज्ञान प्राप्त करनेके लिये क्लेश स्वीकार करते हैं, उनके लिए अन्तः साररहित स्थूल भूसीको कूटनेवाले व्यक्तियोंकी तरह केवल क्लेश ही क्लेश प्राप्त होता है, और कुछ भी प्राप्त नहीं होता ॥४॥

पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिनस्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥५॥

हे अपरिच्छिन्न स्वरूप ! हे अच्युत ! प्राचीन कालमें इस लोकमें बहुतसे योगी पुरुष वर्त्तमान थे। किन्तु वे लोग योगमार्गमें अभीष्ट फल प्राप्त करनेमें असमर्थ होकर अपने अपने लौकिक और वैदिक कर्म आपके लिए समर्पण कर दिये थे। उसके फलस्वरूप उन लोगोंने आपकी कथा श्रवण-कीर्त्तन रूपा भक्तिदेवीके प्रभावसे आत्मतत्वज्ञान प्राप्त कर अनायास ही आपका सामीप्य रूप उत्कृष्ट गति प्राप्त की थी ॥५॥

तथापि भूमन् महिमागुणस्य ते विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः ।
अविक्रियात् स्वानुभवादरूपतो ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥६॥

(पहले श्लोकमें ज्ञानका प्रयास परित्यागपूर्वक भगवद् गुणानुवाद श्रवण द्वारा ही भगवत्प्राप्ति होती है, दूसरे किसी उपाय से नहीं होती—ऐसा कहा गया है। अतएव भगवान के निर्गुण और सगुण इन दोनों स्वरूपों का दुर्ज्ञेयत्व निरूपित (स्थापित) हुआ है। भगवानका स्वरूप दुर्ज्ञेय होने पर भी निर्गुण स्वरूपकी उपलब्धि किसी प्रकार हो सकती है, किन्तु अचिन्त्यगुणसम्पन्न सगुणस्वरूपकी अनुभूति नहीं होती, यह बतलानेके लिए इस श्लोकको अवतारणा की गई है,) आपके गुणातीत स्वरूपकी महिमा विषय-निवृत्त निर्मल अन्तःकरणद्वारा जानी जा सकती है क्योंकि भगवद्महिमा अर्थात् ब्रह्मतत्व, स्वतःप्रकाश रूपसे अर्थात् तद्वस्तु रूपमें ही विषयाकारशून्य निर्विकार है। इसलिए ब्रह्माकारमें परिणत अन्तःकरणका साक्षात्कार अर्थात् सगुण स्वरूप स्फूर्ति प्राप्त नहीं होता ॥६॥

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य ।
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पैर्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ॥७॥

हे देव ! इस समग्र विश्वके मंगलके लिए अवतीर्ण गुणाधिष्ठाता आपकी गुणराशिकी कौन गणना कर सकता है ? जो सभी अत्यन्त निपुण व्यक्ति बहुत जन्मोंमें पृथिवीके धूलिकण, हिमकण और नक्षत्रादिके किरणस्थित परमाणु समूह गिननेमें समर्थ हुए हैं, वे भी आपके अचिन्त्य स्वरूपके अनन्त गुणों की गणना करनेमें असमर्थ हैं ॥७॥

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे च दायभाक् ॥८॥

अतएव जो व्यक्ति अपने द्वारा किये गये कर्मोंके अनुसार प्राप्त सुख-दुःख आदि फल निर्विकार चित्तसे अनासक्त होकर भोग करते-करते सदैव आपकी करुणा प्राप्त करनेकी आकांक्षा रखता है और कायमनोवाक्यसे अपने आपको आपके चरणकमलोंमें समर्पण कर दीन-हीन भावयुक्त होकर जीवन व्यतीत करता है, वही व्यक्ति मुक्तिपदका दायभाक् या परम पदका अधिकारी होता है ॥८॥

पश्येश मेऽनायमनन्त आद्ये परात्मनि त्वय्यपि मायिमायि ।
मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥९॥

हे प्रभु ! मेरा अन्याय आचरण देखिये । क्योंकि मैं मायावियोंके भी मोहजनक अनन्त आदिपुरुष परमात्मारूपी आपके प्रति अपनी माया विस्तार कर आपका ऐश्वर्य दर्शन करने का अभिलाषी हुआ था । अहो ! अग्नि से उत्पन्न अग्नि ज्वाला जिस प्रकार अग्निके प्रति अपना प्रभाव विस्तार नहीं कर सकती उसी प्रकार आपके अंश गर्भोदशायी विष्णुसे उत्पन्न मैं भी आपके प्रति अपना प्रभाव विस्तार करनेमें लेशमात्र भी समर्थ नहीं हूँ ॥९॥

अतः क्षमास्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वपृथगीशमानिनः ।
अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥१०॥

हे अच्युत ! मैं रजोगुणसे उत्पन्न होनेके कारण स्वभावसे ही अज्ञानी और स्वतन्त्र ईश्वराभिमानी हूँ । 'जगत्‌की सृष्टि करनेवाला हूँ"—इस अहङ्कारसे मेरे नेत्र अन्धीभूत हो गये हैं । अतएव "ब्रह्मा मेरा आज्ञाधीन भृत्य और दया का पात्र है"—ऐसा जानकर आप मुझे क्षमा करने की कृपा करें ॥१०॥ (क्रमशः)

नन्दनन्दनकी अद्भुत शोभा

देखि री, देखि शोभा राशि ।
काम पटतर कहा दीजै, रमा जिनकी दासी ।
मुकुट सीस सिखंड सोहैं, निरखि रहिं ब्रज नारि ।
कोटि सुर कोदंड आभा झिरकि डारैं वारि ॥
केस कुंचित बिथुरि भ्रुव पै बीच सोभा भाल ।
मानौ चंदौ अबल जान्यौ, राहु घेरयौ जाल ।
चारु कुंडल सुभग स्रवनन को सकै उपमाइ ।
कोटि-कोटि कला तरनि छबि, देखि तन भरमाइ ॥
सुभग मुख पै चारु लोचन, नासिका इहि भाँति ।
मनौ खंजन बीच सुक मिलि बैठे हैं इक पाँति ॥
सुभग नासा तर अधर छबि रस धरैं अरुनाइ ।
मनौ बिंब निहारि सुक भ्रुव धनुष देखि डराइ ॥
हँसत दसनन चमकताई, वज्र कन रचि पाँति ।
दामिनी, दारिम नहिं सरि कियौ, मन अति भ्रांति ॥
चिबुक बर चित बित चुरावत, नवल नन्द किसोर ।
सूर प्रभु की निरखि सोभा भई तरुनी भोर ॥

(सूरदासजी)

मानव-जातिका परम कर्त्तव्य

श्रीहरि ही एकमात्र निरन्तर कीर्त्तनीय हैं। जगतकी दूसरी सभी बातें हरिकथाकी तुलनामें फूटे कौड़ीके समान हैं। दूसरी बातें उपाधियों द्वारा जगतमें प्रकाशित हुई हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने ये सभी बातें अति निरपेक्ष रूपसे बतलाई हैं, किन्तु फिर भी 'किस बातको ग्रहण किया जाय-' इस विचारमें पड़कर जगत के लोग भ्रान्त हो जाते हैं। श्रुतियोंका कहना है कि भगवान् स्वयं चेतनमय वस्तु हैं। अणु चैतन्य जीव विभु चैतन्य भगवान्से स्वतन्त्र होकर जो विचार करते हैं, वह कदापि ठीक विचार नहीं है। श्रीचैतन्यदेव उनके एकान्त आश्रित प्रणत भक्तोंके निकट प्रकट हुए थे और उन लोगोंके निकट ही अपना स्वरूप प्रकाश किए थे। जो जीव ऐसे श्रीचैतन्यदेवके भक्तोंके निकट श्रीचैतन्यदेवकी वाणी श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं, वे ही नित्य सत्य वस्तुका अनुसन्धान प्राप्त कर नित्यकाल श्रीचैतन्यदेवकी सेवा करते हैं। उस समय उनके लिये और कोई कार्य नहीं रह जाता। श्रीचैतन्यदेवने जगतके अचेतन जीवोंकी चैतन्यवृत्तिको जगाकर उस श्रीचैतन्यवृत्ति के निकट श्रीकृष्णको प्रकाश किया है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें (आदि ३रा प०, ३४ पयार) कहा गया है-

शेष लीलाय नाम धरे श्रीकृष्णचैतन्य
श्रीकृष्ण जानाये सब विश्व कैल धन्य ॥

जगतके सभी दार्शनिक लोग अपने अपने मनोहारी दूकानके सामग्रियोंके Canvasser या विक्रय प्रचारक हैं। किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभु उस प्रकारके Canvasser या प्रचारक नहीं हैं। Charity (वदान्यता) और Canvassing (प्रचार करना) एक बात नहीं हैं। श्री गौरसुन्दर महावदान्य हैं। उनका कहना है कि सत्य स्वयं ही जीवोंकी सेवोन्मुख वृत्तिके निकट प्रकाशित होता है, वह इन्द्रियद्वारा मापे जाने योग्य वस्तु नहीं है। श्रौतपथामलम्बी व्यक्ति ही महाजन हैं तर्कपथावलम्बी नहीं। बन्धमोक्षवित् पुरुष ही महाजन हैं। प्रचलित धर्म सम्प्रदायसमूह परस्पर मतभेदयुक्त हैं। सत्य वस्तुके साथ साक्षात्कार करानेमें असमर्थ होनेके कारण ही ऐसी गड़बड़ी हो रही है। कोई कोई गणेश शक्ति या निरीश्वरताकी पूजा करते हैं, कोई समझते हैं कि भगवान् उनकी रुचिके अनुकूल होंगे। और कोई भगवान्को अपने द्वारा गढ़ लेनेका प्रयास करते हैं और कोई उसे मनगढ़न्त मूर्तिको तोड़ डालनेका प्रयास करते हैं। इस प्रकारके नाना मत जगतमें प्रचलित हैं।

किन्तु श्रीचैतन्यदेवकी अप्राकृत वाणीमें ये सभी बातें नहीं हैं। चेतनवृत्तिमें मनोधर्मकी स्थिति नहीं है। श्रीचैतन्य महाप्रभु भक्तोंके निकट प्रकाशित हुए थे। श्रीचैतन्य भक्तोंके लिये श्रीचैतन्य सेवाको छोड़कर और कोई दूसरा कार्य नहीं है। जगतके लोग

दूसरे दूसरे कार्योंमें अत्यन्त व्यस्त हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुके भक्त लोग कदापि जगत के अन्यान्य व्यक्तियोंकी तरह हिंसाकी बात नहीं कहते। जगतके लोग असत्य राज्यमें तात्कालिक प्रतीकारकी चेष्टामात्र दिखला रहे हैं। असत्यको सत्य समझकर जो प्रतारणामें हम लोग पड़े हुये हैं, उससे हमारा यथार्थ मंगल नहीं हो रहा है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुके भक्त लोग हमारे यथार्थ मंगलके लिए प्रयत्नशील हैं। किन्तु हमलोग उसमें बाधा प्रदान करनेकी चेष्टा करते हैं। पहली बाधा हमारा स्थूल शरीर और दूसरी बाधा हमारा मन है। जो वस्तु इन्द्रियोंद्वारा ग्रहणको जाती है वह इन्द्रियतृप्तिकी वस्तु मात्र है, वह भगवान नहीं है। मंगलार्थी व्यक्तियोंको उसकी सेवा करने की आवश्यकता नहीं है। वहाँ परस्परके साथ संघर्ष, ईर्ष्या, द्वेष, मत्सरता आदि असत् वृत्तियोंका ही ताण्डव नृत्य है। किन्तु अधोक्षज भगवानके सेवकके रूपमें यदि हम सभी एकमात्र भगवानकी इन्द्रियतृप्ति के लिये ही उनकी सेवा करें, तो ही हमारा यथार्थ मंगल होगा।

किसी किसीके मतानुसार भगवान एक order supplier (इन्द्रियतर्पणकी वस्तुयें देनेवाले हैं) अतएव हम लोग कई समय 'धनं देहि' 'जनं देहि' 'मोक्षा देहि' आदि 'देहि, 'देहि' वर लेकर ही व्यस्त हैं। भगवान एक वणिक या व्यापारी नहीं हैं। वे लेन-देन के कार्य करने वाले एक व्यक्तिविशेष मात्र नहीं हैं। श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी उपासनामें प्रवृत्त व्यक्ति लोग कैसे होते हैं, यह बात त्रिदण्डिपाद श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती गोस्वामीपादकी भाषामें व्यक्त हुआ है—

स्त्रीपुत्रादिकथां जहुर्विषयिणः शास्त्रप्रवादं बुधा
योगीन्द्रा विजहुर्मरुन्नियमजक्लेशं तपस्तापसाः।
ज्ञानाभ्यासविधिं जहुश्च यतयश्चैतन्यचन्द्रे परा-
माविष्कुर्वति भक्तियोगपदवीं नैवान्य आसीद्रस॥

अर्थात् श्रीचैतन्यमहाप्रभु द्वारा पराभक्तियोग पदवी आविष्कृत होने पर प्राकृत-विषय रसमग्न व्यक्ति लोगोंने स्त्रीपुत्रादिकी बातका परित्याग किया था, पंडितोंने शास्त्र सम्बन्धीय वाद-प्रतिवाद आदि त्याग कर दिया था, योगियोंने प्राणवायु निरोध करने के लिए साधन क्लेशादिका सर्वथा परित्याग किया था, तपस्वी लोगोंने अपनी तपस्याका परित्याग किया था, उस समय भक्ति रसको छोड़कर और कोई दूसरे प्रकार का 'रस' देखा नहीं गया।

साक्षात् भगवानकी सेवा करने उपस्थित होने पर भगवानके सेवकके लिए भगवद् संगकी अभिलाषा, छोड़कर और कोई अभिलाषा नहीं रहती। जो कुछ वस्तु है मेरा ही है – ऐसा अभिमान जिन्हें है, उनके उन समस्त वस्तुओंको श्रीचैतन्यमहाप्रभुके चरणोंमें समर्पण कर उसके द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा करना ही यथार्थ तृणादपि सुनीच और मानद धर्मका परिचायक है। श्रीचैतन्य देवके धर्ममें असमन्वयता नहीं है और काल्पनिक समन्वयता भी नहीं है। श्रीचैतन्य देवके भक्तोंका कहना है—'हे, जीव! पहले तुम अपने आप को पहचानो।' उनकी बात यदि हमारे लिए अप्रिय मालुम हो, तो हम

हम ही वंचित होंगे । स्नेहमयी माता या मंगल चाहनेवाले पिता जिस प्रकार शिशुकी मंगलकी बात, सद्वैद्य जिस प्रकार रोगीकी स्वस्थताके लिए शिशुको और रोगीको उनकी रुचिकी विपरीत बात कहा करते हैं, उसी प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभुके भक्त लोग भी जगत्‌के सारे कृष्णबहिर्मुख समाजको रुचिके प्रतिकूलमें बातें कहने पर भी उनके यथार्थ मंगलके लिए ही ऐसा कहा करते हैं । चिकित्सकके हाथमें अस्त्र देखकर भयभीत होनेकी बात नहीं है । वे हमारे मंगलके लिए ही आते हैं । अपना एक दल सृष्टि करेंगे, दूसरेके प्रतिष्ठित मतसे अधिकतर प्रतिभासम्पन्न और एक नया मत स्थापन करेंगे, श्रीचैतन्य महाप्रभुके भक्तोंकी ऐसी इच्छा नहीं है—

वांछाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च ।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

भक्तकी भगवान्‌से प्रार्थना

आस्वाद्यं प्रमदारदच्छदमिव श्रव्यं नव जल्पितं
बालाया इव दृश्यमुत्तमवधूलावण्यलक्ष्मीरिव ।
प्रोद्घोष्यं चिरविप्रयुक्तवनिता-सन्देशवाणीव मे
नैवेद्यं चरितं च रूपमनिशं श्रीकृष्ण ! नामास्तु ते ॥

कोई भक्तराज कहते हैं—'हे श्रीकृष्ण आपका प्रसाद, आपका अलौकिक सुन्दर चरित्र, आपका निखिल भुवनमोहन रूप, आपका माधुर्यपूर्ण अनन्त नाम—ये चारों वस्तुएँ मेरे लिए सदैव परम प्रीतिके साथ सुसेवनीय हो जाय । जिस प्रकार कामीजन बारम्बार स्वाद ले लेकर कामिनीके अधरामृतका पान करते रहते हैं, उसी प्रकार भावपूर्वक आपके प्रसादका बारम्बार सेवन किया करूँ । जिस प्रकार लज्जाशील नवविवाहिता बालिकाके वचनोंको उसका पति प्रीतिपूर्वक सुनता है, उसी प्रकार आपके मंगलमय चरित्रोंको बड़े ध्यान एवं गौरवके साथ सुना करूँ । जिस प्रकार परमसुन्दरी नवविवाहिता युवतीके मुख सौन्दर्यको देखनेके लिए सभी नरनारी लालायित रहते हैं, उसी प्रकार मैं आपके सुन्दर अलौकिक रूपका नखशिख दर्शन किया करूँ । जिस प्रकार अपने पतिसे बहुत दिनोंसे बिछुड़ी हुई सती स्त्री अपने पतिके द्वारा प्राप्त सन्देशको बारम्बार अपनी सखियोंसे कहता रहती है और उसी सन्देशको उन सखियोंके मुखसे पुनः सुनकर हृदयमें अत्यन्त प्रसन्न होती है, उसी प्रकार मैं आपके अनन्य सेवकोंके सम्मुख आपके मधुर नामोंका कीर्त्तन किया करूँ, एवं नामरसिक उन भक्तोंके श्रीमुखसे श्रवण किया करूँ । यही मेरी आपके श्रीचरणोंमें विनम्र प्रार्थना है ।

[पद्यावलीसे संग्रहीत]

***

प्रश्नोत्तर

(भक्त्यङ्ग)

१—परमार्थ क्या वस्तु है ?

"भगवान्‌की शुद्धा भक्तिको छोड़कर और किसी भी वस्तुको परमार्थ नहीं कहा जा सकता।"

—'प्रयास स० तो० १०।३

२—भक्तिव्रत-समूह क्या निरर्थक हैं ?

"भक्तिके अङ्ग-व्रतसमूह वृथा प्रयास नहीं हैं।"

—'प्रयास' स० तो० १०।५

३—सर्वश्रेष्ठ पञ्चांग-साधन क्या है ?

"श्रीमूर्तिसेवा, रसिकजनोंके साथ भागवतका अर्थ आस्वादन, सजातीय वासना द्वारा स्निग्ध अपनेसे श्रेष्ठ भक्तसङ्ग, नाम-संकीर्त्तन और मथुरावास—ये पाँच अंग सबसे श्रेष्ठ हैं। इससे संक्षेप करनेपर श्रीनाम-संकीर्त्तन और वैष्णव-सेवा ही सभी अंगोंसे श्रेष्ठ हैं।"

—'तत्तत्कर्मप्रवर्त्तन' स० तो० ११।६

४—श्रीतुलसी-भजन कितने प्रकारका है ?

"तुलसीका दर्शन, तुलसीका स्पर्शन, तुलसी का ध्यान, तुलसीका कीर्त्तन, तुलसी को नमस्कार, तुलसीका माहात्म्य-श्रवण, तुलसीका रोपण, तुलसीकी जलसेवा, तुलसी की पूजा—ये नौ प्रकारसे तुलसीका भजन होता है।"

—'तत्तत्कर्मप्रवर्त्तन' स० तो० ११।६

५—तुलसी-सेवामें कौन सा अङ्ग प्रधान है ?

"तुलसी-सेवा तदीय सेवामें प्रधान है।"

'तत्तत्कर्मप्रवर्त्तन' स० तो० ११।६

६—भक्ष्याच्छादन-प्राप्ति और अपचयमें भक्तोंका क्या कर्तव्य है ?

"यदि भक्ष्य और आच्छादन नहीं मिलें, प्राप्त होकर भी उपयोगमें न आयें, तो उसके लिए भक्तोंको किसी प्रकारसे चिन्ता नहीं करनी चाहिये। शान्तचित्त होकर श्रीकृष्ण-स्मरणमें नियुक्त होना चाहिये।"

—'तत्तत्कर्मप्रवर्त्तन' स० तो० ११।६

७—श्रेष्ठ साधन-पंचकके अनुशीलनसे किस विषयमें लोभ होता है और उसका क्या फल है ?

'श्रीमूर्त्तिसेवा, रसिकजनोंके साथ श्रीभागवत-तात्पर्यका आस्वादन, अपनेसे श्रेष्ठ राग-मार्गीय साधुसंग, नाम-संकीर्त्तन और श्रीमथुरा मण्डलमें स्थिति—निरपराध-चित्तके साथ इस पंचाग-साधनका सम्बन्धानुष्ठान करने पर जो सुकृति होती है, उसके द्वारा प्राप्त सत्कृपा प्रभावसे रागप्राप्त व्रजवासियोंके 'कृष्णरूप इष्टके दास्यमें साधक पुरुषोंको लोभ उत्पन्न होता है। उस लोभसे व्रजवासियोंकी भावानुगा कृष्णसेवारूपा रागानुगा नामकी वेदातीता साधनभक्ति उदित होता है। उस भक्तिका साधन करते-करते थोड़ेसे समयमें विशुद्धा अर्थात् केवला प्रीति उदित हो जाती है। यही श्रीमन्महाप्रभुकी गूढ़ शिक्षा है।"

—श्रीम० शि० ११ वाँ प०

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

भगवन्नामके परम गायक महाभागवतवर नारदजी

(गताङ्क से आगे)

श्रीमद्भागवतमें नारदजीने उपबर्हण गंधर्वके रूपमें अपने जन्म लेनेकी बात युधिष्ठिर महाराजको बतलाया है:—

अहं पुराभवं कश्चिद् गन्धर्व उपबर्हणः ।
नाम्नातीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसम्मतः ॥
रूपपेशलमाधुर्यसौगन्ध्यप्रियदर्शनः ।
स्त्रीणां प्रियतमो नित्यं मत्तस्तु पुरुलम्पटः ॥
एकदा देवसत्रे तु गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
उपहूता विश्वसृग्भिर्हरिगाथोपगायने ॥
अहं च गायंस्तद्विद्वान् स्त्रीभिः परिवृतो गतः ।
ज्ञात्वा विश्वसृजस्तन्मे हेलनं शेपुरोजसा ।
याहि त्वं शूद्रतामाशु नष्टश्रीः कृतहेलनः ॥
तावद्दास्यामहं जज्ञे तत्रापि ब्रह्मवादिनाम् ।
शुश्रूषयानुषङ्गेण प्राप्तोऽहं ब्रह्मपुत्रताम् ॥

(भा० ७।१५।६९-७३)

पूर्वजन्ममें इस कल्पके पहलेके महाकल्पमें मैं एक गन्धर्व था। मेरा नाम उपबर्हण था। गन्धर्वोंमें मेरा बहुत सम्मान था। मेरी सुन्दरता, सुकुमारता और माधुर्य आदि अपूर्व थे। मेरे शरीरसे सुगन्धि निकला करती और मैं देखने में बहुत ही प्रियदर्शन था। स्त्रियाँ मुझसे अत्यधिक प्रेम करती थीं। मैं सदा अत्यन्त प्रमत्त और अत्यधिक विलासप्रिय था। एकबार देवताओंकी सभामें ज्ञान सत्र हुआ। उसमें बड़े-बड़े प्रजापति लोग आये थे। भगवान्‌की लीलाओंका गान करनेके लिए उन लोगोंने गन्धर्व और अप्सराओंको बुलाया था। मैं यह अच्छी तरह जानता था कि यह सन्तोंका समाज है और वहाँ भगवान्‌की लीलाका ही गान होता है। फिर भी मैं स्त्रियोंके साथ प्राकृत रसपरिपूर्ण लौकिक गीतोंका गान करता हुआ उन्मत्त होकर वहाँ पहुँचा। देवताओंने देखा कि उन लोगोंका अनादर हो रहा है। ब्रह्माजीने क्रुद्ध होकर अपनी शक्तिसे मुझे शाप दिया—"तुमने हमारी अवहेलना की है, अतएव तुम्हारी सौन्दर्य-सम्पत्ति और शोभा नष्ट हो जाय और तुम शीघ्र ही शूद्र हो जाओ।" उनके शापसे मैं दासीपुत्र हुआ। किन्तु उस जीवनमें कृत भक्तोंके साधुसंग और सेवा-शुश्रूषासे पुनः ब्रह्माजीका पुत्र हुआ।

नारदजीके दासीपुत्र होनेका वृत्तान्त श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें वर्णित है। नारदजीने स्वयं अपने मुखसे यह वृत्तान्त श्रीवेदव्यासजीको बतलाया है। किस प्रकार वैष्णवोंकी सेवासे भगवान प्रसन्न होते हैं और जीव उच्चपद प्राप्त करते हैं, यह बात स्वयं नारदजीने अपने अलौकिक चरित्रसे व्यक्त किया है।

एक दिन सूर्योदयके समय सरस्वती नदीके पवित्र जलमें स्नानादि दैनिक कृत्य समा-

पन करके एकान्त पवित्र स्थानमें आसीन भूत-भविष्यत्के ज्ञाता महर्षि वेदव्यासजी चिन्तन करने लगे कि समयके परिवर्त्तनको लोग समझ नहीं रहे हैं। धर्मसंकरताके प्रभाव से भौतिक वस्तुओंको शक्तिका ह्रास हो रहा है। संसारके जन शक्तिहीन, श्रद्धाहीन, आत्मतत्वहीन हो रहे हैं। उनकी बुद्धि कर्तव्यका ज्ञान नहीं कर पाती। आयु क्षीण हो रही है। लोगोंमें भाग्यहीनता बढ़ रही है। वे सोचने लगे कि मैंने समस्त वर्णों और आश्रमोंका हित करनेके लिए वेदके चार विभाग किये। इतिहास, पुराण और पंचम वेद महाभारतकी रचना की और उन्हें अपने शिष्योंको पढ़ाया। वेदश्रवणके अनधिकारी स्त्री-शूद्र-पतितोंके कल्याणके लिए ही महाभारतकी रचना की थी। इस प्रकार जगत्के कल्याणके लिए सदैव चेष्टा करने पर भी आत्मप्रसन्नता प्राप्त नहीं हुई। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि—

किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः।
प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः॥
(भा० १।४।३१)

अवश्य ही अब तक मैंने भगवानको प्राप्त करानेवाले धर्मोंका निरूपण नहीं किया है जो धर्म परमहंसोंको प्रिय है और भगवानको भी प्रिय है। मालूम होता है कि यह मेरी अपूर्णताका का कारण है।

उसी समय भगवद्भक्तश्रेष्ठ नारदजी का अकस्मात् शुभागमन हुआ। व्यासदेवने परम आदरके साथ देवर्षि नारदजीका अभिनन्दन और आतिथ्य किया। सुखपूर्वक विराजमान होकर नारदजीने मन्द हास्यभरे मधुर वचनोंसे वेदव्यासजीसे चिन्ताका कारण पूछा। तब व्यासजीने अपनी चिन्ताका कारण बतला दिया।

नारदजीने उस समय कहा कि जिससे भगवान प्रसन्न नहीं होते, वह ज्ञान या शास्त्र अधूरा ही है। आपने धर्म आदि पुरुषार्थोंका जैसा निरूपण किया है, वैसा भगवान श्रीकृष्णकी महिमाका निरूपण नहीं किया।

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो,
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा,
न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षया॥
तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो,
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत्,
शृंवन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः॥
(भा० १।५।१०,११)

रसभाव अलङ्कारादि युक्त जिस वाणीसे जगत्को पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके सर्वोत्कृष्ट यशका गान कभी नहीं होता, वह तो कौओंके लिए उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अपवित्र मानी जाती है। मानसरोवर के कमनीय कमलवनमें विहार करनेवाले हंसोंकी भाँति गोलोक धाम में विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त लोग कभी उसमें रमण नहीं करते।

इसके विपरीत जिसमें सुन्दर रचना भी नहीं है और जिसमें कोई शब्दगत या अर्थगत दोष भी क्यों न हो, परन्तु जिसका प्रत्येक श्लोक या शब्द भगवान्के सुयशसूचक नामों से युक्त है, वह वाणी लोगोंके सारे पापोंका नाश कर देती है। क्योंकि उन नामोंका साधुपुरुष लोग वक्ता रहने पर श्रवण करते

करते हैं, कोई नहीं रहने पर स्वयं कीर्तन करते हैं और श्रोता रहने पर कीर्तन करते हैं।

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं,
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे,
न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्॥
अथो महाभाग भवानमोघदृक्,
शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः।
उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये,
समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम्॥
(भा० १।५।१२,१३)

वह निर्मल ज्ञान या निष्काम कर्म भी, जो मोक्ष (ब्रह्म-सायुज्य) प्राप्तिका साक्षात् साधन है, यदि भगवानकी भक्तिसे रहित हो, उसकी भी शोभा नहीं होती अर्थात् उसकी सार्थकता नहीं होती। फिर जो साधन और फलकाल—दोनों ही दशाओंमें सदा ही अमंगलरूप है, वह काम्य कर्म,एवं जो भगवान्‌को अर्पण नहीं किया गया है, ऐसा अहैतुक (निष्काम) कर्मकी भी कैसी शोभा हो सकती है ?

हे महाभागवतवर व्यासजी ! आप अमोघ दृष्टिवाले हैं। आपकी कीर्त्ति पवित्र है। आप सत्यपरायण, दृढ़व्रत और पवित्र चरित्रयुक्त हैं। इसलिए अब आप सम्पूर्ण जीवोंको बन्धनसे मुक्त करनेके लिए समाधिके द्वारा अचिन्त्यशक्तिवाले भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण कीजिए।

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा,
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो,
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्॥
(भा० १।५।२२)

विद्वानोंने इस बातका निरूपण किया है कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान और दानका एकमात्र प्रयोजन यही है कि पुण्यकीर्त्ति श्रीकृष्णके गुणों और लीलाओंका वर्णन किया जाय।

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्णकी लीला गान करनेका उपदेश देकर अपने जीवनके सम्बन्धमें वर्णन करने लगे।

हे व्यासजी ! पिछले कल्पमें अपने पूर्व जीवनमें मैं वेदवादी ब्राह्मणोंकी एक दासीका पुत्र था। वे योगी लोग वर्षाकालमें एक स्थानपर चातुर्मास्यका पालन कर रहे थे। बचपनसे ही मैं उनकी सेवामें नियुक्त कर दिया गया था:—

ते मय्यपेताखिलचापलेऽर्भके,
दान्तेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्त्तिनी।
चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्यदर्शनः,
शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्पभाषिणि॥
उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः,
सकृत्स्म भुञ्जे तदपास्तकिल्बिषः।
एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतस-
स्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते॥
तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायता-
मनुग्रहेणाशृणवं मनोहराः।
ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः,
प्रियश्रवस्यङ्ग ममाभवद्रुचिः॥
(भा० १।५।२४,२६)

मैं यद्यपि बालक था, फिर भी किसी प्रकारकी चञ्चलता नहीं करता था। जितेन्द्रिय था, और खेलकूदसे दूर रहता था। मैं आज्ञानुसार उनकी सेवा करता था। मैं बहुत कम बोलता था। मेरे इस शील स्वभावको देखकर समदर्शी मुनियोंने मुझपर अत्यन्त अनुग्रह किया। उनकी अनुमति प्राप्त करके

बरतनोंमें लगा हुआ जूँठन मैं एक बार खा लिया करता था। इससे मेरे सारे पाप धुल गये। इस प्रकार उनकी सेवा करते करते मेरा हृदय शुद्ध हो गया और वे लोग जैसा भजन-पूजन करते थे, उसमें मेरी भी रुचि हो गयी। प्रिय व्यासजी! उस सत्सङ्गमें उन लीलापरायण महात्माओंके अनुग्रहसे मैं प्रतिदिन श्रीकृष्णकी मनोहर कथाएँ सुना करता था। श्रद्धापूर्वक एक-एक पद श्रवण करते २ प्रियकीर्त्ति भगवानमें मेरी प्रीति हो गयी। भगवानमें निश्चला बुद्धि हो जानेके कारण मैं सत्-असत् रूप जगत्को परब्रह्म-स्वरूप भगवान्की मायाकल्पित देखने लगा।

इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरे-
विश्रृंवतो मेऽनुसवं यशोमलम्।
संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिः-
भक्तिः प्रवृत्ताऽऽत्मरजस्तमोपहा॥

इस प्रकार शरद और वर्षा—इन दोनों ऋतुओंमें तीनों समय उन महात्मा मुनियोंने श्रीहरिके निर्मल यशका संकीर्त्तन किया और मैं प्रेमपूर्वक प्रत्येक बात सुनता था। ऐसा करते करते चित्तके रजोगुण एवं तमोगुणको नाश करनेवाली शुद्धा भक्तिका मेरे हृदयमें प्रादुर्भाव हुआ।

दीनवत्सल उन महात्माओंने जाते समय विनयी, श्रद्धालु, सेवापरायण, संयमी आज्ञाकारी मुझे कृपा कर गुह्यतम भक्तिका उपदेश दिया जिसका स्वयं भगवान्ने अपने श्रीमुखसे किया है।

हे व्यासजी! शास्त्रविहित जो कर्म भगवान्की प्रसन्नताके लिए किये जाते हैं, उन्हींसे पराभक्तियुक्ति विशुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति होती है। बाकी सभी कर्म मनुष्योंको जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें डालनेवाले हैं। जो कर्म भगवानको समर्पित किये जाते हैं, वे ही सार्थक हैं।

अस्तु समय बीत गया। मेरी एकमात्र माता थी। वह स्त्री होनेके कारण परतन्त्र तो थी ही; साथ ही साथ मूढ़ और दासी थी। फिर भी इकलौते मुझसे बहुत स्नेह करती, मेरे योगक्षेमको सब समय चिन्ता करती थी। मैं भी माताके स्नेह-बन्धनमें बँधकर उस ब्राह्मण बस्तीमें ही रहता था। मेरी अवस्था पाँच वर्षकी थी; मुझे देशकालका भी ज्ञान नहीं था। एक दिनकी बात है कि मेरी माँ गाय दुहनेके लिए रातमें घरसे बाहर निकली। रास्तेमें सर्प डस लेनेके कारण उसकी मृत्यु हो गयी। कालकी ही ऐसी प्रेरणा थी।

तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः।
अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम्॥
(भा० १।६।१०)

मैंने समझा भक्तोंका मङ्गल चाहनेवाले भगवान्का यह भी एक अनुग्रह है। इसके पश्चात् मैं उत्तर दिशाकी ओर चल पड़ा। उस मार्गमें मुझे अनेकों धन-धान्यसे परिपूर्ण देश, नगर, गाँव, अहीरोंकी चलती-फिरती बस्तियाँ, खानें, खेड़े, नदी और पर्वतोंके तट-वर्त्ती पड़ाव, वाटिकाएँ, वन-उपवन, और रंग-बिरंगी धातुओंसे युक्त विचित्र पर्वत दिखायी पड़े। जंगली वृक्ष, शीतल जलसे युक्त जलाशय दीख पड़े। कई स्थान बड़े भयानक थे जिनमें साँप, उल्लू, सियार, सिंह आदि हिंसक जन्तु निवास कर रहे थे। मेरा शरीर चलते-फिरते शिथिल हो गया। मुझे बड़े जोरकी प्यास लगी। भूख सताने लगी। पास में नदी मिली। उसमें स्नान-आचमन-जलपान कर उस विजन वनमें एक पीपलके

वृक्षके नीचे आसन लगाकर बैठ गया। उन महात्माओंसे जैसा सुना था, हृदयमें निवास करनेवाले परमात्माका उसी प्रकार ध्यान करने लगा।

ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा ।
औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ॥
(भा० १।६।१७)

भक्तिभावसे वशीकृत चित्तद्वारा भगवानके चरणकमलोंका ध्यान करते ही भगवत्प्राप्तिकी उत्कट लालसासे मेरे नेत्रोंसे आंसू छलक आये और हृदयमें धीरे धीरे भगवान् प्रकट हो गये। प्रेमभावसे रोम-रोम पुलकित हो गये। हृदय शान्त शीतल हो गया। आनन्दकी बाढ़में डूब गया। मुझे किसी सी बातका ध्यान नहीं रहा। पर कुछ क्षणके पश्चात् शोकनाशक लुभावना वह भगवानका रूप अदृश्य हो गया। मैं अत्यन्त विकलताके साथ आसनसे उठ खड़ा हुआ। उस समय मुझे शोकनाशक भगवान्की वाणी सुनायी दी—खेद है कि इस जन्ममें तुम मेरा दर्शन नहीं कर सकोगे। जिनकी वासनाएँ शान्त नहीं हुई हैं, उन अपरिपक्व साधकोंके लिए मेरा दर्शन दुर्लभ है। लालसा जाग्रत करनेके लिए ही मैंने तुम्हें एक बार अपने रूपकी झलक दिखलायी है। अल्पकालीन संतसेवासे ही तुम्हारी चित्तवृत्ति मुझमें स्थिर हुई है। किसी भी कालमें मेरी स्मृति तुम्हारे हृदयसे नहीं हटेगी। इसके पश्चात् आनन्दसे कालकी प्रतीक्षा करता हुआ पृथ्वीपर विचरने लगा।

एवं कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः ।
कालः प्रादुरभूत्काले तडित्सौदामिनी यथा ॥
प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम् ।
आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत् पांचभौतिकः ॥
(भा० १।६।२८,२९)

इस प्रकार भगवान्की कृपासे मेरा हृदय शुद्ध हो गया। आसक्ति मिट गयी और मैं कृष्णपरायण हो गया। कुछ समय बाद जैसे एकाएक बिजली चमकती है, वैसे ही समय पर मेरी मृत्यु उपस्थित हुई। मुझे शुद्ध भगवत्पार्षद शरीर प्राप्त होनेका अवसर आने पर प्रारब्धकर्म समाप्त हो जानेके कारण पाँचभौतिक शरीर नष्ट हो गया।

प्रलयकालमें सृष्टिके साथ श्वासोंके द्वारा मैं भी ब्रह्माके हृदयमें प्रवेश कर गया। जब ब्रह्माने जाग्रत होकर पुनः सृष्टि की, तो मरीचि आदि ऋषियोंके साथ ब्रह्माके शरीरसे प्रकट हो गया। तभीसे मैं भगवानकी कृपासे वैकुण्ठादिमें और तीनों लोकोंमें बिना किसी रोकटोकके विचरण किया करता हूँ। भगवानकी दी हुई इस स्वर-ब्रह्मसे विभूषित वीणापर तान छेड़कर मैं उनकी लीलाओंका गान करता हुआ सारे जगत्में भ्रमण करता रहता हूँ। उस समय भगवान् मेरी हृदय-गुफामें मुझे दर्शन देते हैं।

एतद्ध्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहुः ।
भवसिन्धुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ॥
(भा० १।६।३५)

जिन लोगोंका चित्त निरन्तर विषय भोगोंकी कामनासे आतुर हो रहा है, उनके लिए भगवान्की लीलाओंका कीर्तन संसार सागरसे पार जानेका जहाज है। यह मेरा अपना सिद्ध अनुभव है।

इस तरह महर्षि वेदव्यासजीको अपना जीवन-वृत्त और भगवत्भक्तिका उपदेश देकर आत्मतुष्टिका उपाय कहकर नारदजीने विदा ली।

परम भागवत नारदजीके महान चरित्रसे शिक्षा ग्रहण कर परम आराध्य प्रभुकी भक्ति में हमें तन्मय होना है।

—वागरादी श्री कृष्णचन्द्रजी शास्त्री काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत (षष्ठ धारा)

श्रीकृष्ण लीला-परिचय

दैनन्दिनी अप्राकृत राधाकृष्ण-नित्यलीला पाठ करनेके सभी व्यक्ति अधिकारी नहीं हैं। यह परमाद्भुत रहस्य है और विशेष रूपसे गुप्त रखने योग्य है। जो व्यक्ति इसके अधिकारी नहीं हैं, उन्हें यह लीला श्रवण नहीं कराना चाहिए। जड़बद्ध जीव जब तक चित्तत्वके राग-मार्गमें लोभ प्राप्त न हों, तब तक उनके निकटसे इस लीला-वर्णनाको गुप्त रखना आवश्यक है। नाम-रूप गुण-लीलाका अप्राकृतत्व अर्थात् जब तक हृदयमें शुद्ध चिन्मय स्वरूपका उदय न हो, तब तक कोई भी व्यक्ति इस लीलाका श्रवण करनेका अधिकारी नहीं होता। अनधिकारी व्यक्ति इस लीलाका पाठ कर केवल मायिक रूपसे जड़ीय स्त्री-पुरुष सङ्गमादि ध्यान कर दुर्गति प्राप्त करेंगे। पाठक व्यक्ति सावधान रहकर नारदजीकी तरह अप्राकृत शृंगार सरकार प्राप्त कर इस लीलामें प्रवेश करेंगे। नहीं तो मायिक कुतर्क आकर उनके हृदय को अज्ञान-अन्धकारमें पातित करेगा। यह लीला-वर्णन अधिकारी व्यक्तियोंका नित्य पाठ्य और चिन्तनीय है। यह लीला सर्व-पापहर और अप्राकृतभावप्रद है। यह लीला नरलीला होने पर भी और लौकिककी तरह देखे जाने पर भी सर्वशक्तिमान और सर्वमंगलमय पुरुषके सम्बन्धमें अत्यन्त चमत्कार रूपसे अलौकिकी है। गोस्वामियोंने इस लीलाका जो संक्षिप्त-सार लिखा है, वह अधिकारियोंके लिए नित्य स्मरणयोग्य है। इस लीलाका अवलम्बन कर श्रीगोविन्द-लीलामृत एवं अनेकों रसग्रन्थ रचित हुए है। अधिकारी व्यक्ति इसे पाठ कर भजनानन्द प्राप्त करेंगे। सप्तम वृष्टिमें जो शृंगारादि रसोंका विचार किया गया है, उसे उत्तमरूप से समझकर प्रात्यहिक रागमार्गीय साधक व्यक्ति लीला-सौष्ठव ध्यान कर अपनी नित्य सेवाकी भावना करेंगे। यही उनका नित्य भजन है। रास-पंचाध्यायका निम्नलिखित श्लोक हमें भली प्रकारसे विचार करनेकी आवश्यकता है—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदञ्च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः ॥
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

(भा० १०।३३।३९)

अर्थात् जो धीर व्यक्ति व्रजवधूओं (गोपियों) के साथ भगवान् श्रीकृष्णकी रासक्रीड़ाका श्रद्धान्वित होकर गुरुमुखसे श्रवण कर अनुक्षण कीर्त्तन करते हैं, वे शीघ्र ही भगवान श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें परा-भक्ति (प्रेमभक्ति) प्राप्त कर हृदयरोग रूपी कामका अति शीघ्र ही परित्याग करनेमें समर्थ होते हैं। यहाँ इस श्लोकमें 'श्रद्धा' शब्द द्वारा अप्राकृत विषयमें श्रद्धाको लक्ष्य किया गया है।

श्रीकृष्णलीला दो प्रकार की है—नित्य और नैमित्तिक। गोलोकमें सब समय ही नित्यचरित्र और अष्टकालीय-लीला वर्त्तमान है। भौम जगतमें उस अष्टकालीय-लीलामें नैमित्तिक लीला संयुक्त है। ब्रजसे गमनागमन और असुरमारणादि कार्य नैमित्तिक लीलाके अन्तर्गत हैं। यह लीला प्रपञ्चबद्ध साधकके लिए अपरिहार्य है। नैमित्तिक लीला केवल व्यतिरेक रूपसे गोलोकमें वर्त्तमान है। केवल प्रपञ्चमें ही वह लीला वस्तुतः प्रकाशित होती है। साधक लोगोंके लिए नित्यलीलाके प्रतिकूल रूपमें यह नैमित्तिक लीला प्रतिभात हो रही है या देखी जाती है। साधक उस उस लीला-विशेषमें अनर्थनाशको आशा करेंगे। नैमित्तिक लीला निम्न प्रकारसे है—

१) पूतनावध—पूतना भुक्तिमुक्ति शिक्षक कपट गुरु है। भुक्तिमुक्तिप्रिय कपट साधु लोग भी पूतना तत्व हैं। शुद्ध भक्तके प्रति कृपा कर बालकृष्ण अपने नव उदित भावकी रक्षाके लिए पूतना वध करते हैं।

२) शकट-भंजन—प्राक्तनी (पूर्व-पूर्व जन्मोंका) और आधुनिकी असत् संस्कार, जड़ता और अभिमानजनित भारवाहित्व है। बालकृष्ण भाव शकटभंजन पूर्वक उस अनर्थको दूर करते हैं।

३) तृणावर्त्त-वध—वृथा पण्डिताभिमान, उसके द्वारा उत्पन्न कुतर्क, शुष्क युक्ति, शुष्क न्यायादि और तत्प्रियलोकसङ्ग है। हैतुक पाषण्ड मतसमूह इसीमें न्यस्त रहते हैं। बालकृष्ण भाव साधककी दीनतासे कृपाविष्ट होकर उस तृणावर्त्तको मारकर भजनका कन्टक दूर करते हैं।

४) यमलार्जुन-भंजन—श्रीमदसे आभिजात्य (ऊँचे कुलमें जन्म-ग्रहण) दोषद्वारा उत्पन्न जो अभिमान है उसमें भूतहिंसा, स्त्रीसङ्ग और मद्यमांस सेवादि उत्पन्न होकर जिह्वा लाम्पट्य और निर्दयतासे भूतहिंसा—निर्लज्जादि दोष होते हैं। उस दोषको कृष्ण कृपा कर यमलार्जुन-भंजन द्वारा दूर करते हैं।

५) वत्सासुर-वध—बालबुद्धिजनित लोभ से जो दुष्क्रिया और परबुद्धिवशवर्त्तिता होती है, वही वत्सासुर नामक अनर्थ है। कृष्ण कृपा कर उसे दूर करते हैं।

६) बकासुर-वध—कुटीनाटि, धूर्त्तता और शठतासे उत्पन्न मिथ्या व्यवहार ही बकासुर है। उसका नाश नहीं करनेसे शुद्ध कृष्ण भक्ति नहीं होती।

७) अघासुर-वध—भूतहिंसा, द्वेषजनित परद्रोहरूप पापबुद्धि दूरीकरण है। यह एक नामापराध है।

८) ब्रह्ममोहन—कर्मज्ञानादिकी चर्चामें सन्देहवाद, ऐश्वर्यबुद्धि द्वारा माधुर्यकी अवमानना।

९) धेनुक-वध—स्थूलबुद्धि, सद्ज्ञानाभाव, मूढ़ता जनित तत्वान्धता, स्वरूपज्ञान-विरोध भी इसीके अन्तर्गत है।

१०) कालीयदमन—अभिमान, खलता, क्रूरता और दयाशून्यता दूरीकरण है।

११) दावाग्निनाश—परस्पर वाद, सम्प्रदाय-विद्वेष, अन्यदेवादिके प्रति विद्वेष, युद्ध इत्यादि संघर्षमात्रमें ही दावानल है।

१२) प्रलम्ब-वध—स्त्री-लाम्पट्य, लाभ, पूजा और प्रतिष्ठाशा दूरीकरण।

१३) दावानल-पान—नास्तिक्य आदि दोष द्वारा धार्मिक व्यक्ति और धर्मके प्रति जो उपद्रव है, उसका दूरीकरण है।

१४) याज्ञिक-विप्र—वर्णाश्रमाभिमान द्वारा कृष्णके प्रति उत्पन्न उदासीनता और कर्मजड़ता।

१५) इन्द्रपूजा-वारण—बह्वीश्वरबुद्धि-त्याग। अहंग्रहोपासना-दूरीकरण भी इसीके अन्तर्गत है।

१६) वरुणसे नन्दोद्धार—वारुणी आदि मद्य सेवासे भजनानन्दकी वृद्धि होती है, ऐसी बुद्धिका दूरीकरण।

१७) सर्पसे नन्दमोचन— मायावादादि असत् तत्व द्वारा कवलित भक्तितत्वका उद्धार करना है। मायावादी सङ्गत्याग।

१८) शंखचूड़ वध-मणिमोचन—प्रतिष्ठाशा और स्त्रीसङ्गस्पृहा वर्जन।

१९) अरिष्टासुर वृष-वध—छलधर्मादिके अभिमानसे भक्तिकी अवहेलना आदि। उसका विनाश।

२०) केशीवध—मैं बड़ा भक्त और आचार्य हूँ—यह अभिमान, ऐश्वर्यबुद्धि और पार्थिव अहंकारका वर्जन।

२१) व्योमासुर-वध—चौरादि और कपट भक्त संगत्याग।

श्रीकृष्णसंहिताके आठवें अध्यायके १३ वें श्लोकसे लेकर अध्यायके आखिर तक १८ प्रकारके अनर्थ व्रजभजनके प्रतिबन्धकके रूप में उल्लिखित हैं। उसमें यमुलार्जुन-भंजन और याज्ञिक विप्रोंका वृथाभिमान दौरात्म्य—इन दोनों लीलाओंका योग करनेसे ही बीस प्रकारके प्रतिबन्धक होते हैं। ये सभी ही व्रजभजनके प्रतिकूल तत्व हैं। नामभजन-कारी साधक सबसे पहले ही 'हरि' सम्बोधन द्वारा हरिके निकट दिनरात इन प्रतिकूल विषय-वर्जनकी शक्ति प्रार्थना करेंगे। ऐसा करने पर भक्तचित्त शोधित होगा। कृष्णने जिन सभी असुरोंका वध किया था, उन सभी उत्पातोंको चैत्यराज्यसे दूर करनेके अभि-प्रायसे श्रीहरिके निकट दीनताके साथ क्रन्दन करते हुए प्रार्थना करने पर वे उन सभी अनर्थोंको दूर करते हैं। जिन सभी असुरोंका बलदेव विनाश करते हैं, उन अनर्थोंको अपनी चेष्टासे दूर करेंगे। यही व्रजभजनका रहस्य है। भारवाहित्वरूप कुसंस्कार ही धेनुकासुर है। स्त्रीलाम्पट्य, लाभ, पूजा, प्रतिष्ठाशा रूप 'प्रलम्ब' नामक अनर्थको अपने यत्नाग्रहसे कृष्णकृपा द्वारा दूर करेंगे। स्व-स्वरूप, नामस्वरूप और उपास्य-स्वरूप सम्बन्धी अज्ञान और अविद्या ही धेनुकासुर है। इस अनर्थको साधक लोग अत्यन्त यत्नके साथ दूर करेंगे। स्त्री या पुरुष सङ्ग-लाम्पट्य, अर्थलोभ विषयचेष्टा, अपने सम्मानादिकी वृद्धि, अपनी पूजा-प्राप्ति, प्रतिष्ठालाभ—ये सभी प्रबल तत्व हैं। इन्हें नामभजनके महा-प्रतिकूल जानकर अपने यत्नाग्रहसे दूर करना होगा। दैन्यके सबल होने पर अवश्य ही कृष्ण कृपा होती है। ऐसा होने पर बलदेवका आविर्भाव होकर वे अनर्थ अति शीघ्र ही दूर होते हैं। इस प्रकार क्रमशः अन्वय-अनु-शीलनमें विशेष उन्नति होती है। यह प्रक्रिया स्वभावतः गूढ़ है। सद्गुरुके निकट निर्मल चरित्र द्वारा इसकी शिक्षा ग्रहण करनी होगी।

श्रीमद्भागवतके टीकाकार (३)

श्रीसुदर्शन-सूरी

परिचय

रामानुज सम्प्रदायके आचार्य श्रीसुदर्शन-सूरी प्रतिभाशाली विद्वान् एवं भगवद्भक्तोंमें मूर्धन्य थे। अपना अमूल्य जीवन भारतीकी सेवामें व्यतीत करनेवाले सुदर्शनजीको 'भट्टाचार्य' नामसे भी अभिहित किया जाता था।

ये तामिल देशके निवासी थे एवं हारीत गोत्रके ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुए थे, जैसाकि श्रीमद्भागवतकी पुष्पिका द्वारा जाना जाता है—

"इति श्रीहारीतकुलतिलक वाग्विजय-सूनुना श्रीरङ्गराजदिव्याज्ञालब्ध वेदव्यासापर नामधेय श्रीसुदर्शन सूरिणाभिहिते श्रीमद्भाग-वत पुराणे व्याख्याने श्रीशुकपक्षीये दशम-स्कन्धे नवतितमोऽध्यायः।"

(शुकपक्षीया १०।९०)

इस पुष्पिकासे यह भी ज्ञात होता है कि इनके पिताका नाम 'वाग्विजय' या 'विश्व-जयो' था। इनके गुरुका नाम वरदार्य या वर-दाचार्य था। सुदर्शनके पितामहका नाम 'राम-पिल्लाई' और प्रपितामहका नाम 'कुरेश' था।

सम्प्रदाय

'वेदव्यासापर नामधेय' से स्पष्ट है कि श्रीरङ्गराजकी आज्ञासे इन्हें यह उपाधि प्राप्त हुई थी। प्रसिद्ध रामानुजाचार्यके ये भागिनेय एवं शिष्य थे। सुदर्शनने अपने गुरु श्रीवरदाचार्यसे श्रीभाष्यकी व्याख्या सुनकर 'श्रुत प्रकाशिका' नामक ग्रन्थकी रचना की थी। श्रीरामानुज भाष्यको समझनेके लिए 'श्रुत प्रकाशिका' का पठन अत्यन्त आवश्यक है। आपने श्रीरामानुजके वेदार्थ-संग्रहकी 'तात्पर्य-दीपिका' लिखी थी एवं ब्रह्मसूत्र पर 'श्रुत—प्रदीपिका' नामक टीका लिखी थी। सम्प्रदाय के प्रति यह भाव मातुल श्रीरामानुजके स्नेह की प्रेरणासे और भी पल्लवित हुआ था। अतः ये विशिष्टाद्वैतवादी थे।

स्थितिकाल

सुदर्शन-सूरीका अप्रकट समय निश्चित माना जाता है। इनके तिरोधानके बारेमें यह कहा जाता है कि दिल्लीके तात्कालीन बादशाह अलाउद्दीनके सेनापति मलिक काफूर ने सन् १३६७ में मदुराई पर आक्रमण किया था। उस समय श्रीरङ्गम पर भी आक्रमण किया था। उसी आक्रमणके समय श्रीसुदर्शन-सूरीका तिरोधान हुआ था। अतः १३६७ में तिरोधान मानने पर १२५०-१२७० के मध्य इनका जन्मकाल माना जा सकता है। किन्तु विशिष्टाद्वैतवादके अनुयायी विद्वान् सुदर्शन-सूरीका अप्रकट काल यवन-आक्रमणके समय नहीं मानते। आक्रमणके १०-१२ वर्ष पश्चात् उनकी परमपद-प्राप्ति मानते हैं।

कृतियाँ

१) श्रुत प्रकाशिका २) तात्पर्य-दीपिका ३) श्रुत-प्रदीपिका ४) शुक-पक्षीया (श्रीमद्-भागवतकी टीका)।

टीका वैशिष्ट्य

विशिष्टाद्वैतके प्रथम भागवत-टीकाकार श्रीसुदर्शनाचार्य सूरी की टीका 'शुकपक्षीया' नामसे विख्यात है। यह टीका शुकदेवके अभीष्टको लेकर लिखी गई है या शुकदेवजी का मनोमत इस टीकामें ही खोला गया है। अतः यह नामकरण किया गया—ऐसा प्रतीत होता है। यह वृन्दावनसे आठ टीकाके साथ प्रकाशित हुई है।

टीका महत्वपूर्ण होने पर भी स्वल्प-परिमाण में है। न तो इसमें अन्वय-मुख शैलीको प्राधान्य दिया गया है और न भूमिका शैली को। मूलके कतिपय पद उठाकर उनकी व्याख्या ही अधिकतर की गई है। मूल श्लोक लगानेसे इस टीकाका कोई उपयोग नहीं किया जा सकता। यथा—

तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्त दृष्टये।
गुणप्रवाहोऽयमविद्ययाकृतः ॥

(भा० १०।४०।१२)

टीका—यदविद्यया यदीयया प्रकृत्या मम माया दुरत्ययेति।

'अप्यंघ्रिमूले' की टीकामें 'वीतशंक' का अर्थ 'गतशंक' इतना ही लिखा गया है। यद्यपि इस प्रकारकी शैली अन्य टीकाकारों की भी है, पर वह कहीं कहीं है। इनकी टीकामें यह शैली सर्वत्र पायी जाती है।

सम्प्रदायके तत्व निरूपण-प्रसङ्गका उल्लेख अवश्य ही संकेतके रूपमें है, जिनके कारण उसका अत्यधिक सम्मान है। प्राचीन उपलब्ध टीकाओंमें श्रीधर स्वामीकी टीकाके पश्चात् सुदर्शन-सूरीकी टीका ही मिलती है। सम्भव है कि इस टीकामें किसी परिस्थितिवश इतना संकोच किया गया है अन्यथा टीकामें उनका अपना व्यक्तित्व भी दिखलाई देता।

डा० श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी एम० ए०, पी० एच० डी०

—+-+—

भ्रम-संशोधन

पाठकोंसे निवेदन है कि पिछले अङ्क, संख्या ५ में निम्नलिखित संशोधन कर पाठ करें—

१) पृष्ठ ९५, १ म कॉलममें, २० वें पंक्तिमें 'अङ्गालिङ्गन' शब्द न होकर 'अङ्कनालिङ्गन' शब्द होगा।

२) पृष्ठ १०२, दूसरे शीर्षकमें 'दही' शब्द न होकर 'देही' शब्द होगा।

—प्रकाशक

सन्दर्भ-सार

(भक्ति-संदर्भ-१०)

'वेद' और 'स्मृति' इन दो शब्दों द्वारा भगवद् बहिर्मुख धर्मकी अकर्मण्यता और भगवद् धर्मकी आवश्यकताका वर्णन किया गया है। सारे वेद, वेदज्ञ व्यक्तियोंकी स्मृति (व्यवस्था), ब्रह्मण्यतादि स्वभाव, साधु लोगों का आचार और आत्माका सन्तोष—ये धर्म के आधार हैं।

श्रीमद्भागवतमें जिस धर्मकी वर्णना की गई है, वह निर्मत्सर साधुलोगोंका परम धर्म है। उसमें धर्मार्थकामादि त्रैवर्गिक फलभोग-मय कोई छलना नहीं है। उसमें विशेष रूपसे 'मुक्तिवांछा' नामक छल-धर्मका उत्सादन (निराकरण) किया गया है। इस ग्रन्थमें जीवों के एकमात्र ज्ञातव्य, परम मङ्गलप्रद और त्रिताप नाशकारी वास्तव वस्तुकी बात कही गई है। यहाँ भगवत्कथा श्रवण-कीर्त्तन-स्म-रणात्मक साक्षात् भक्तिको ही जीवका नित्य-धर्म कहा गया है। यहाँ देवर्षि नारदजी का वाक्य आलोचनीय है—

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे-
भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ।
यत्र क्व वा भद्रमभूदमुष्य किं
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥

(भा० १।५।१७)

नित्य-नैमित्तिक धर्म अथवा वर्णाश्रम धर्मका परित्याग कर हरिपादपद्म भजन करते करते यदि कोई असिद्ध अवस्थामें भजनसे विच्युत हो जाय या उसकी मृत्यु हो जाय, तो कर्ममें अनधिकारके कारण आशंका नहीं करनी चाहिये। क्योंकि जिस किसी अवस्थामें उस भक्तिरसिकका कदापि अमङ्गल नहीं होता। परन्तु भजनहीन व्यक्तिके भक्तिशून्य स्वधर्म-पालनके द्वारा क्या प्रयोजन प्राप्त होगा? साधारण धर्म और भक्तिधर्म बाहरी लक्षणमें एक जैसे देखे जाने पर भी देह-मन सम्बन्धीय नश्वर अनित्य धर्म और नित्य आत्मधर्ममें यथेष्ट भेद है। निमि-नवयोगेन्द्र सम्वादमें कविने निमिराजके प्रश्नोंका इस प्रकारसे उत्तर दिया था—

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य
पादाम्बुजोपासनमत्रनित्यम् ।
उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद्
विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥

(भा० ११।२।१३

अर्थात् अच्युत भगवानके पादपद्म उपा-सनाद्वारा जीवोंका आत्यन्तिक मङ्गल होता है। दूसरे सभी अनित्य उपासनाओंमें भय है, किन्तु भगवान् विष्णुकी उपासनामें किसी वस्तुसे भयभीत नहीं होना पड़ता। इस संसारमें अच्युत श्रीकृष्णकी उपासनाके प्रभावसे अनित्य देह और मनमें आत्मबुद्धि युक्त भवभयसे उद्विग्न व्यक्तियोंका भय सम्पूर्णरूपसे निवृत्त हो जाता है।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात् ।
करोति यद्यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥

(भा० ११ २।३६)

काय, मन और वाक्य तथा बुद्धि एवं इन्द्रिय द्वारा जो-जो कार्य किया जाय, उन सभी कर्मोंको नारायणको समर्पण करना चाहिये—इत्यादि वाक्यों द्वारा वे सभी कर्म लौकिक होने पर भी भगवानके लिए अर्पित होने पर उसे भागवतधर्म कहा जाता है। किन्तु ऐसा कहनेपर भी भक्ति केवलमात्र श्रवणकीर्त्तन आदि लक्षणमयी होनेके कारण ऐसा कथन उसके लिए व्याघातकारक सिद्ध हो सकता है, ऐसा सोचकर भक्तिका अव्यभिचारित्व और केवल कीर्त्तनादिमयता जिस प्रकार प्रकटित होता है, यह कहनेके लिए परवर्त्ती दो श्लोकोंका उद्धरण किया गया है—

अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो
ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा ।
तत् कर्मसंकल्पविकल्पकं मनो
बुधो निरुन्ध्याद्भयं ततः स्यात् ॥
शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥

(भा० ११।२।३८-३९)

शुद्धात्मामें द्वैत प्रपंच वस्तुतः नहीं रहने पर भी ध्यानकारी व्यक्तिका हृदय अविद्यात्मक होनेके कारण उसकी बुद्धिमें प्रपंच कल्पित होता है । उदाहरणके लिए कहा जा सकता है—स्वप्न और अभिलाष (मनोरथ)। इसलिए जो मन सभी कर्मोंकी कल्पना करता है और उन्हें त्याग करता है, उस मनका संयम करने पर अव्यभिचारिणी भक्तिके प्रभावसे अभयपद की प्राप्ति होगी । मनोनिरोधकार्य कष्टकर और दुःसाध्य होनेकी आशंकासे सहज पथ कह रहे हैं—भगवद्भजनमें आसक्ति द्वारा अपने आप मनका निरोध हो जायगा । चक्रपाणि भगवान् श्रीहरिके जन्म और नाना प्रकारकी लीलाओं और यशोदानन्दन, देवकीनन्दन आदि सभी नामोंका श्रवण कर असत्सङ्गका परित्याग करते हुए उन्हें लज्जाशून्य होकर गान करते करते विचरण करना चाहिये । परवर्त्ती अध्यायमें कर्मादिका परित्याग कर साक्षात् भक्तिका विधान किया गया है ।

परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् ।
कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥
नाचरेद्यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः ।
विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥
वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे ।
नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥
य आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः ।
विधिना च यजेद्देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम् ॥

(भा० ११।३।४४-४७)

सत्य अर्थका संगोपन करनेके लिए उसे दूसरे प्रकारसे कहने का नाम परोक्षवाद है । कर्ममय वेद परोक्षवादसे परिपूर्ण है एवं अज्ञ अशान्त बालस्वभावसम्पन्न व्यक्तियोंके अनुशासन के लिए है । जिस प्रकार मातापिता रोगग्रस्त सन्तानके आरोग्यके लिए मिठाईका प्रलोभन दिखलाकर दवाईका सेवन कराते हैं, वैसे ही सभी कर्मके विधानमें फलका

प्रलोभन दिखाकर पश्चात् कर्म से निवृत्ति ही वेदोंका तात्पर्य है। जो मूर्ख व्यभिचारी व्यक्ति वेदकथित कर्मकाण्डका आचरण नहीं करता, वह अधर्मानुष्ठानके कारण मृत्यु के पश्चात् मृत्यु अर्थात् बार-बार मृत्युकी यन्त्रणा भोग करता है। अनासक्त होकर वेदकथित कर्म अनुष्ठान करते हुए जो व्यक्ति स्वयं फलभोग न कर ईश्वरके लिए अर्पण करते हैं, वे नैष्कर्म्य सिद्धि प्राप्त करते हैं अर्थात् उनका कर्मभोग निवृत्त हो जाता है। कर्म में फलश्रुति का वर्णन केवल कर्ममें रुचि पैदा करनेके लिए ही है। जो व्यक्ति जीवात्मा के हृदयकी ग्रन्थि मोचन करनेके इच्छुक हैं, वे वैदिक विधानके साथ पंचरात्रागममें कहे गये विधानानुसार भगवान् केशवकी पूजा करेंगे। व्यतिरेक रूपसे कह रहे हैं—

भगवन्तं हरिं प्रायो न
भजन्त्यात्मवित्तमाः।
तेषामशान्तकामानां का
निष्ठाविजितात्मनाम् ॥
मुखबाहूरुपादेभ्यः
पुरुषस्याश्रमैः सह।
चत्वारो जज्ञिरे वर्णा
गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥
य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम्।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥
(भा० ११।५।१-३)

हे आत्मविदश्रेष्ठ मुनियों! जो सभी व्यक्ति भगवान हरिका भजन नहीं करते, उनका चित्त प्रायः ही संयत नहीं रहता और कामना भी शान्त नहीं होती। उनकी परिणाममें क्या गति होती है? इस प्रश्नके उत्तरमें कह रहे हैं—विराट् पुरुषके मुख-बाहु-जांघ और पाद प्रदेशसे चार आश्रमोंके साथ विप्रादि चार वर्ण उत्पन्न हुए हैं। सत्त्वगुणसे ब्राह्मण, सत्त्व-रजोगुणसे क्षत्रिय, रजस्तमो गुणसे वैश्य और तमोगुणसे शूद्र और अन्त्यज। जघन देशसे गार्हस्थ्य, हृदयसे ब्रह्मचर्य, वक्षस्थलसे वानप्रस्थ और मस्तकसे संन्यास आश्रम उत्पन्न हुआ है। इनमेंसे जो व्यक्ति साक्षात् आत्माके प्रभु परम पुरुषका भजन नहीं करते और अवज्ञा करते हैं, वे लोग अपने-अपने स्थानसे भ्रष्ट होकर अधःपतित हो जाते हैं। द्रुमिलके उपदेशसे भी कहा गया है—

त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः
स्वौको विलंघ्य परमं व्रजतां पदं ते।
नान्यस्य बर्हिषि बलीन् ददतः स्वभागान्
धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्द्धनि ॥
(भा० ११।४।१०)

देवताओंने नरनारायणका इस प्रकारसे स्तव किया—हे विभो! जो व्यक्ति आपका भजन करते हैं, वे इन्द्रादि देवताओं द्वारा अनेक विघ्न प्राप्त होते हैं। क्योंकि आपके भजनकारी व्यक्ति जिस परमपदको प्राप्त करते हैं, वह इन्द्रादि देवताओंके निवासस्थान से अत्यन्त उन्नत स्थानमें अवस्थित है। किसानों द्वारा राजाको कर देने की तरह जो सभी मनुष्य भगवद् भजनरहित होकर यज्ञमें देवताओंको यज्ञ भाग देते हैं, उन्हें कोई विघ्न नहीं होता। किन्तु आप जिनकी रक्षा करते हैं, ऐसे भक्त लोग निश्चय ही विघ्नोंके मस्तक पर पदाघात कर अनायास ही उत्तीर्ण हो जाते हैं।

इसके पश्चात् निमिराज पूछते हैं—वे भगवान् किस समय, किस वर्णसे, किस प्रकार

अवतीर्ण होकर किस नामसे और किस विधि से पूजित होते हैं ? उत्तरमें करभाजन ऋषि कहते हैं—

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः ।
नानावर्णाभिधाकारो नानैव विधिनेज्यते ॥

(भा० ११।५।२०)

सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुगमें भगवान् केशव नाना वर्ण, नाना नाम, नाना आकारोंसे और नाना विधियोंसे पूजित होते हैं। श्रीकृष्ण-उद्धव संवादमें भी कहा गया है—

त्वन्तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबन्धुषु ।
मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृक् विचरस्व गाम् ॥

(भा० ११।७।६)

हे उद्धव ! तुम स्वजनबन्धुओंका सब स्नेह परित्याग कर मुझमें सम्यक् प्रकारसे मन अर्पणपूर्वक समदर्शन होकर विचरण करो। विषयोंद्वारा अविचलित चित्त गोस्वामी उद्धव को लक्ष्य कौर भगवान्ने अन्यान्य भजनाभिलाषी जीवोंको भगवदभिनिविष्ट चित्त समदर्शन होकर विचरण करने की शिक्षा दी थी। इसके पश्चात् केवल ज्ञानयोगकी असाध्यता और भक्तिका सुखसाध्यत्व एवं परमपुरुषार्थत्व वर्णित है—

न कुर्यात् न वदेत् किंचित्
न ध्यायेत् साध्वसाधु वा ।
आत्मारामोऽनया वृत्त्या
विचरेज्जड़वन्मुनिः ॥

(भा० ११।११।१७)

मुनि व्यक्ति भला-बुरा कुछ भी नहीं करेंगे, नहीं कहेंगे, चिन्ता भी नहीं करेंगे। वे आत्माराम होकर निस्पृह भाव ग्रहण कर जड़ की तरह विचरण करेंगे।

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद्विविधदुःखवार्दितस्य ॥

(भा० १२।४।३९)

नाना दुःखरूप दावानलसे दग्ध होकर जो व्यक्ति अत्यन्त दुष्पार संसारसागर उत्तीर्ण होनेकी इच्छा रखते हैं, उनके लिए भगवान् पुरुषोत्तमके लीलाकथारस-सेवनको छोड़कर और कोई उपाय नहीं है।

ज्ञानकी अकर्मण्यता इस प्रकार वर्णित है—

शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि ।
श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥
गां दुग्धदोहामसतीञ्च भार्यां
देहं पराधीनमसत् प्रजांच ।
वित्तं त्वतीर्थीकृतमङ्ग वाचं
हीनां मया रक्षति दुःखदुःखी ॥

(भा० ११।११।१८,१६)

जो व्यक्ति शब्दब्रह्म अर्थात् वेदमें पारदर्शी होकर केवल पाण्डित्यको प्रशंसा कर परतत्वानुशीलनरूप भजनमें निपुण नहीं हो सकते, उनका शास्त्रपाठरूप परिश्रम बन्ध्या गाय पालनकी तरह बेकार हो जाता है। अतएव भगवत् सम्बन्धिनी लीलारहित वाक्य वैदिक होने पर भी उसका अनुशीलन नहीं करना चाहिये। यही बात दूसरे श्लोकमें कही गयी है—जिसके भाग्यमें दुःखके पश्चात् दुःख अवश्य वर्त्तमान हैं, वह व्यक्ति ही बन्ध्या या निःशेषित-दुग्ध गाय, असती स्त्री, परा-

धीन देह, असत्-पुत्र, सुपात्रको न दिया हुआ धन, और मेरे (भगवान् के) नाम-रूप-गुण लीलादि रहित ग्राम्यकथा का आश्रय ग्रहण करता है।

यस्यां न मे पावनमङ्ग कर्म
स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ।
लीलावतारेप्सितजन्म वा स्याद्
बन्ध्यां गिरं तां बिभृयान्न न धीरः ॥
(भा० ११।११।२०)

हे उद्धव ! जिस वाक्यमें विश्वकी सृष्टि, स्थिति, प्रलयरूप जगत् शोधक भगवत् चरित्र विषय या लीलावतारोंकी लीलाकथा नहीं है, ऐसे वाक्यको बुद्धिमान व्यक्ति बन्ध्या वाक्य (निष्फल) जानकर कदापि आदर नहीं देते।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

प्रचार-प्रसंग

परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्मका तृतीय वार्षिक विरहोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता और संस्थापक, भारतव्यापी श्रीगौड़ीय मठोंके संस्थापक नित्यलीलाप्रविष्ट जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके परमप्रेष्ठ निजजन, श्रीश्रीस्वरूप-रूपानुगवर नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका तृतीय वार्षिक विरह-तिथिपूजा एवं महोत्सव गत २८ आश्विन, १५ अक्टूबर १९७०, बृहस्पतिवारके दिन समितिके मूल मठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ और शाखा मठों में बड़े समारोहपूर्वक मनाये गये हैं। उक्त दिवस सभी मठोंमें गुरुतत्वकी महिमाका कीर्त्तन, श्रीश्रील गुरुपादपद्मके अप्राकृत जीवन-चरित्र और आदर्श, उनके अभावमें गुरुसेवकोंकी विरह-कातरता आदि विषयों पर विशद आलोचना की गई।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें उक्त दिवस प्रातःकाल मङ्गलारतिके पश्चात् गुरु-वन्दना, गुर्वष्टक, गुरु-परम्परा, वैष्णव-वंदना, पंचतत्व आदि कीर्त्तनके पश्चात्, परम पूज्य पाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने गद्गद् वाणी एवं रुँधे हुए कण्ठसे श्रीश्रीलगुरुपादपद्मकी शिक्षाओं और अप्राकृत जीवनी पर प्रवचन दिया। दोपहर को निमन्त्रित वैष्णवों एवं सज्जनोंको विविध प्रकारका सुस्वादु महाप्रसाद सेवन कराया गया। शामको आयोजित विशेष-सभामें श्रीकुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी, श्रीनृत्यकृष्ण ब्रह्मचारी, श्रीरामगोपाल ब्रह्मचारी, श्रीमुरली-मोहन ब्रह्मचारी, श्रीमहामहेश्वर ब्रह्मचारी, श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी, पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त उद्धवमन्थी महाराज आदि वक्ताओंने श्रीश्रील गुरुपादपद्मके जीवन-चरित्र के विभिन्न पहलुओं पर मार्मिक प्रकाश डाला। अन्तमें परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण माहराजने संक्षेपमें श्रीश्रील गुरुपाद-पद्मके विचार-वैशिष्ट्य और जीवनकी विशेषताओंपर हृदयग्राही प्रवचन दिया। महाजन-पदावली कीर्त्तन के पश्चात् सभाका कार्यक्रम पूर्ण हुआ।

श्रीश्रीदामोदर-व्रत एवं श्रीअन्नकूट-महोत्सव

गत २७ आश्विन्, १४ अक्टूबर, बुधवारसे लेकर २७ कार्त्तिक, १३ नवम्बर, शुक्रवार तक समितिके सभी मठोंमें श्रीश्रीराधादामोदर व्रत, नियमसेवा-व्रत या उर्ज्ज-व्रतका समारोहपूर्वक अनुष्ठान किया गया है। श्रीकेशव जी गौड़ीय मठमें प्रातःकाल, अपराह्न और रात्रि—तीनों समय पाठ, कीर्त्तन और प्रवचन होते थे। प्रातःकाल श्रीदामोदराष्टकं, श्रीशिक्षाष्टकं, श्रीउपदेशामृतं, और श्रीमनःशिक्षाका पाठ होता था। अपराह्नको श्रील प्रभुपादजीकी पत्रावली एवं रात्रिको श्रीमद्-भागवत दशम स्कन्धका पाठ होता था। सबेरे एवं शामको श्रीदामोदराष्टकं एवं श्रीराधा-तत्त्वका कीर्त्तन होता था।

इसी व्रतके अन्तर्गत १८ कार्त्तिक, ३१ अक्टूबर, शनिवारको समितिके सभी मठोंमें श्रीगोवर्द्धन-पूजा और श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग गान्धर्विका-गिरिधारी श्रीश्रीराधाविनोद बिहारीजीका अन्नकूट महोत्सव बड़े समारोह पूर्वक मनाया गया है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें यह उत्सव वार्षिक उत्सवके रूप में मनाया जाता है। उक्त दिवस यहाँ सबेरे-शामको श्रीगोवर्द्धन-पूजा और अन्नकूट-प्रसङ्ग पाठ, दोपहरको अन्नकूट-दर्शन और महाप्रसाद-वितरण एवं शामको छाया-चित्र द्वारा द्वारा श्रीकृष्णलीला प्रदर्शनी—आदिका समारोहपूर्वक उद्‌यापन किया गया।

परमाराध्यतम श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजका तिरोभाव-महोत्सव

गत २३ कार्त्तिक, ९ नवम्बर, सोमवार, श्रीउत्थान एकादशीके दिन परमाराध्यतम श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजकी तिरोभाव-तिथि समिति के सभी मठोंमें समारोहपूर्वक मनाई गयी है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें शामको आयोजित विशेष सभा में परम पूज्यवाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, श्रीनृत्यकृष्ण ब्रह्मचारी एवं श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने परमाराध्यतम श्रील बाबाजी महाराजके अप्राकृत वैराग्यमय-जीवन और शिक्षाओं पर बड़े ही मार्मिक रूपसे प्रकाश डाला।

— निजस्व संवाददाता